ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 161-162**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- II, Issues-40, YEAR- April-June 2026

नाट्य मंचन में रंग–संरचना का महत्व

पल्लवी देवी
पी–एच0डी0 स्कॉलर– हिंदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (जम्मू & काश्मीर) भारत
E-mail:pallvibhagat090@gmail.com

Received-12.05.2026, Revised-20.05.2026, Accepted-26.05.2026,

सारांशः *नाटक एक दृश्य–श्रव्य कला है। जिसकी प्रभावशीलता केवल कथानक, संवाद और अभिनय पर निर्भर नहीं करती, बल्कि मंचीय प्रस्तुति के विविध कलात्मक तत्वों पर भी आधारित होती है। इन तत्वों में रंग संरचना का विशेष स्थान होता है। रंग संरचना नाट्य मंचन का वह पक्ष है जो रंगो, प्रकाश, वेशभूषा, दृश्यबंद और ध्वनि तथा संगीत के माध्यम से नाटक के भाव, वातावरण तथा तथ्य को दर्शकों तक प्रभावी ढंग से पहुंचाता है। यह नाटक को सौंदर्य प्रदान करने के साथ–साथ उसके अर्थ और संवेदना को भी सशक्त बनाती है।*

कुंजीभूत शब्द– नाट्य मंचन, रंग–संरचना, दृश्य–श्रव्य कला, कथानक, संवाद, अभिनय, वेशभूषा,दृश्यबंद, ध्वनि, संगीत, सौंदर्य, संवेदना।

प्रस्तावना– साहित्य की समस्त विधाओं में नाट्य विधा सबसे प्राचीन, महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट मानी गई है। इसे पढ़ने और सुनने के साथ प्रत्यक्ष रूप से देखा भी जाता है, जिस कारण भारतीय परंपरा में इसे दृश्य काव्य की संज्ञा दी गई है। इसी तरह पश्चिम में इसके लिए ड्रामा और प्ले– दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। यही से नाटक अपनी विशिष्ट प्रकृति ग्रहण करना प्रारंभ करता है तथा अपने पाठ्य रूप से दृश्यता की ओर अग्रसर होता है। दृश्य काव्य में तो यह अर्थ स्वयं ही समाहित है जबकि पश्चिमी शब्द ड्रामा इसके लिखित और प्ले मंचीय रूप की ओर इंगित करता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि नाटक एक जीवंत दृश्यात्मक साहित्यिक विधा है, जिसे जीवंत रंगकर्मी रंगमंच पर विभिन्न रंगमंचीय उपकरणों द्वारा प्रेक्षक समूह के समक्ष प्रदर्शित करता है। नाटक के अतिरिक्त जहां अन्य समस्त साहित्यिक विधाएं अपने लिखित रूप में पूर्ण मानी जाती है वहीं नाटक की संपूर्णता और सार्थकता केवल एक पठनीय पुस्तक में न देखकर उसके मंचित रूप में देखी जाती है। वह मात्र एक पाठ्य पुस्तक नहीं है, बल्कि रंगमंच से जुड़ी एक प्रदर्शन कला है, जिसका दर्शन माध्यम केवल रंगमंच है, ”नाटक कोई पाठ्य पुस्तक मात्र नहीं है वह एक जीवंत अनुभव है और रंगमंच उसका माध्यम।”[1] यही कारण है कि नाट्य कृति के सृजन उपरांत उसकी रचना प्रक्रिया समाप्त नहीं होती अपितु उसकी अभिव्यक्ति, उसका संप्रेषण रंगमंच पर जाकर ही संभव और सार्थक होता है। रंगमंच के अभाव में नाटक के मंचन की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि दोनों के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध है। यह दोनों ही परस्पर पूरक बनकर सृजनात्मक अभिव्यक्ति करते हैं और यदि यह संबंध नहीं होगा तो नाटक के अभाव में रंगमंच और रंगमंच के अभाव में नाटक दोनों ही अपूर्ण और एकांगी रह जाएंगे।

इसी तरह यदि नाटक के मंचन की रंग प्रक्रिया पर यदि ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होता है कि मंचन को सफल बनाने में रंग संरचना के विभिन्न रंगमंचीय तत्वों का विशेष योगदान रहता है, जिनसे रंगमंच की संरचना हुई है। संरचना का सामान्य अर्थ है– किसी वस्तु या प्रणाली के घटकों का सुव्यवस्थित संगठन। संरचना किसी भी वस्तु विचार समाज या प्रणाली के उन तत्वों की व्यवस्थित व्यवस्था को कहते हैं, जो उसे मिलकर संपूर्णता प्रदान करते हैं। संरचना शब्द का तात्पर्य किसी वस्तु को पूर्णता प्रदान करना होता है। गोविंद चातक के अनुसार ”संरचना शब्द का तात्पर्य सामान्यतः संघटना, बनावट, निर्मित अथवा संरचना से है।”[2] वस्तुत संरचना से अभिप्राय किसी वस्तु के निर्माण में सहायक तत्वों के सामूहिक रूप से है। इसी प्रकार जब रंग–संरचना या रंगमंच की संरचना की बात आती है तो उसमें मंचसज्जा एवं दृश्यबंद, वेशभूषा, प्रकाश योजना, रूप– सज्जा, संगीत व्यवस्था एवं पार्श्व ध्वनि सभी तत्व मिलकर उसे पूर्ण बनाते हैं, साथ ही नाटक को कलात्मकता प्रदान करते हुए उसके मंचन को प्रभावपूर्ण ढंग से सफल बनाने का प्रयास करते हैं।” रंगमंच एक कला है३ रंगमंच के विभिन्न उपकरण इस कला माध्यम को साकार करने वाले विविध अंग है जैसे दृश्य योजना, प्रकाश, ध्वनि प्रभाव, वेशभूषा, रूप सज्जा, संगीत, नृत्य आदि।”[3] रंगमंच पर नाटक प्रस्तुत करते समय रंग संरचना के इन समस्त तत्वों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है क्योंकि नाटक की मंचीय सार्थकता इन्हीं पर निर्भर करती है।

नाटक के कथानक को दृष्टि में रखते हुए मंच पर उसके अनुकूल वातावरण, प्रमुख घटनाओं से संबंधित आवश्यक सामग्री तथा उसके अतिरिक्त अन्य साजो सामान की उपलब्धता ही मंच सज्जा कहलाती है। रंगमंच पर पर्दा उठाते ही दर्शकों का ध्यान सर्वप्रथम मंच सज्जा की ओर केंद्रित होता है। मंच सज्जा न केवल नाटक के उद्देश्य को दर्शाती है बल्कि दर्शकों पर प्रथम प्रभाव भी डालती है। सुंदर और सुव्यवस्थित मंच नाटक की गरिमा में वृद्धि करता है तथा कलाकारों की नाट्य प्रस्तुति को आकर्षक बनाने के साथ नाटकीय अनुभूति को चरम तक ले जाता है।” दृश्य सज्जा नाटक के समग्र क्रियाकलाप में तथा नाटकीय परिस्थितियों को अनुभूति के चरम बिंदु तक पहुंचाने का रचनात्मक साधन है।”[4] मंच की सजावट और वातावरण दर्शकों को नाटक से अंत तक बांधकर रखने में सहायक होते हैं। मंच पर प्रयोग में लाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु नाटक की प्रस्तुति का अभिन्न अंग होती है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। मंच पर दृश्य सज्जा का हर उपकरण, हर हिस्सा अभिनय का, अभिव्यक्ति का, प्रस्तुति का अभिन्न अंग होता है। इसीलिए मंच सज्जा के चयन में नाटक की मूल संवेदना सहित उसके रंग– परिवेश और संकलन–त्रय का विशेष ध्यान रखना चाहिए और पूर्ण तन्मयता के साथ मंच की सजावट करनी चाहिए। इसी तरह यदि प्रकाश व्यवस्था की बात की जाए तो प्रकाश व्यवस्था से अभिप्राय नाट्य प्रस्तुति को रंगमंच पर प्रभावशाली, आकर्षक और भावनात्मक बनाने की एक महत्वपूर्ण रंगमंचीय प्रक्रिया से है, जिसे नाट्य प्रस्तुति का सबसे आवश्यक घटक माना गया है। यह रंगमंच का सबसे अहम यांत्रिक साधन है। प्रकाश के माध्यम से पात्रों, नाटक की विशिष्ट घटनाओं, मंच उपकरणों, पात्रों की भावनात्मक स्थिति और उनकी वेशभूषा तथा रूप सज्जा को विशेष प्रकार से दिखाया और छुपाया जाता है। इसकी सहायता से नाटक में वातावरण की सृष्टि करने और पात्रों की भावदशा को आकर्षक रूप से उभारने का प्रयत्न किया जाता है। जयदेव तनेजा का कहना है कि ”प्रकाश व्यवस्था द्वारा दृश्यबंद, अभिनेता, मंच उपकरण, वेशभूषा इत्यादि रंगमंच पर केवल दिखाएं/छिपाए ही नहीं जाते बल्कि एक विशेष प्रकार से दिखाएं/छुपाए जाते हैं, जिससे नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न अंगों की विशेषताएं समन्वित भी होती हैं और दर्शकों के मन पर अपेक्षित प्रभाव भी पैदा होता है।”[5] प्रकाश के माध्यम से ही मंच पर दिन–रात, सूर्योदय, चांदनी रात, अंधेरी रात, धूप, छाया, ऋतु परिवर्तन जैसे बहुत से प्राकृतिक प्रभावों को दर्शाने में सफलता प्राप्त होती है। ऐसे में कहा जा सकता है कि प्रकाश योजना रंगमंच का सबसे उपयोगी यांत्रिक उपकरण है जो भाव संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग है– उसकी वेशभूषा। यह न केवल देह को ढकने का साधन है

अपितु उसकी संस्कृति, रीति–रिवाज और सामाजिक स्थिति की परिचायक भी है। ”जैसी वेशभूषा वैसा व्यक्तित्व’’ यह कहावत व्यक्ति के जीवन में वेशभूषा के महत्व को स्पष्ट करती है। व्यक्ति के पहनावे द्वारा ही उसके स्वभाव, पेशे और सामाजिक स्तर का अनुमान भी लगाया जाता है। इसी तरह रंगमंच के क्षेत्र में भी वेशभूषा का काफी महत्व है या यूं कहा जा सकता है कि वह रंगमंच का अविच्छिन अंग है। नाटक में पात्रों की पहचान का मुख्य आधार वेशभूषा ही होती है। ”वेश शब्द का अर्थ है– बनना या बनावटी आकृति की सजावट अर्थात आकृति के द्वारा ही पात्रों में पृथकता दृष्टिगोचर होती है।’’[6] इसके माध्यम से ही दर्शक को ज्ञात होता है कि पात्र किस काल, समाज और परिस्थिति से जुड़ा हुआ है। वेशभूषा नाटक के पात्र को उसकी भूमिका में पहुंचाने का सशक्त माध्यम है। वेशभूषा का चयन पात्रों के अनुकूल तथा उनका रंग रूप दृश्यसज्जा, प्रकाश योजना आदि के अनुरूप होना चाहिए, जो नाटक के प्रभाव में वृद्धि कर सके और उसकी आत्मा को सुरक्षित रख सके। नाट्य निर्देशक को पात्रों की वेशभूषा का चुनाव अमीर–गरीब, राजा–प्रजा, स्त्री–पुरुष, आधुनिक–पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों की वेशभूषा के अनुसार ही करना चाहिए।

रंगमंच की अवास्तविकता की दुनिया में वास्तविकता की भ्रांति उत्पन्न करने तथा नाटक के पात्रों को विश्वसनीय बनाने हेतु वेशभूषा के समान रूप सज्जा भी एक महत्वपूर्ण साधन है। मुख को चरित्र का प्रतिबिंब माना जाता है। इसलिए पात्र के परिवेश, स्वभाव और मनोभावों के अनुकूल ही उसका रूप विन्यास होना भी आवश्यक है। सबसे पहले अभिनय कर्ता की काया के स्वरूप और पात्र के चरित्र के मध्य समन्वय होना चाहिए। जैसे अगर कोई व्यक्ति कृष्ण की भूमिका निभाने जा रहा है तो स्पष्ट है कि उसका रंग सांवला, बड़ी आंखें और शरीर कृषकाय होगा। अपने समय, स्थान और घटना के अनुरूप पात्र की रूप सज्जा भी विभिन्नता लिए हुए होती है जिसे रूप सज्जाकार पूरी एकाग्रता के साथ समझता है और उसी के अनुकूल अभिनयकर्ताओं के रूप को सजाता भी है। ”अलग–अलग देश काल के पात्रों की रूप सज्जा तो अलग–अलग होती ही है। एक ही जाति, धर्म, देश और समय के लोगों का रूप रंग भी उनके चरित्र के अनुरूप अलग–अलग होता है। इसलिए बाल, माथा, आंखें, भवें,नाक, कान, हाथ,गाल, ठोडी, हाथ–पैर इत्यादि को रूप सज्जा द्वारा पात्र की उम्र और उसके चरित्र के अनुरूप बनाया जाता है।’’[7] रूपसज्जाकार अभिनय करता का चयन हो जाने के पश्चात अपनी कला से उसका रचाव मूल पात्र को केंद्र में रखकर करता है। नाटक की कथावस्तु को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न पात्रों की रूप सज्जा में विभिन्नता होनी चाहिए जो दर्शक में उत्सुकता और एकाग्रता उत्पन्न करें। उसका रूप रंग ऐसा हो जो पात्र के अनुकूल हो और उसकी मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करें। इसलिए वस्त्र विन्यास के सम्मान ही रूप सज्जा को महत्वपूर्ण रंग उपकरण माना गया है जिसमें अभिनयकर्ता के रूप को पात्र के चरित्र के अनुरूप ढाला जाता है। जैसे किसी को डरावना, सुंदर, बूढ़ा, कुरूप दिखाना है, तो उनका रंग–रूप ऐसा होना चाहिए कि वह अभिनय की गरिमा को बनाए रखें। प्रकाश योजना के समान ही ध्वनि और संगीत योजना भी रंग संरचना का एक महत्वपूर्ण यांत्रिक उपकरण है। रंगमंच पर नाटक की कथावस्तु को अधिक प्रभावी और आधुनिक युग के अनुरूप विभिन्न भावों को संप्रेषित करने हेतु ध्वनि तथा संगीत का उचित प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से नाट्य प्रस्तुति में एक विशेष अनुभूति उद्भूत होती है। प्रकाश योजना जो कार्य दृश्य रूप में करती है वही कार्य ध्वनि योजना श्रव्य माध्यम से करती है। रंगमंच को पूर्ण सार्थकता प्रदान करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इसके माध्यम से नाटक को न केवल सौंदर्य प्राप्त होता है बल्कि उसकी गरिमा में भी वृद्धि होती है। ”संगीत, नृत्य, ध्वनि प्रभाव न केवल नाटक के सौंदर्य को बढ़ाते हैं, रंगमंचीय कलात्मक को वरीयता देते हैं, दर्शकों से सकारात्मक संबंध स्थापित करते हैं, बल्कि नाटकीय संकेत, अर्थगरिमा को भी बढ़ाते हैं।’’[8] ध्वनि और संगीत व्यवस्था प्रेक्षक वर्ग पर गहन प्रभाव छोड़ती है। इनके प्रयोग से हर्ष, उल्लास, दुख, निराशा, भय, करुणा, उदासी, विरह जैसे बहुत से भावों को आकर्षक और तीव्र बनाने की चेष्टा की जाती है। इसके द्वारा अनेक प्राकृतिक और अप्राकृतिक प्रभावों को मंच पर सरलता से प्रस्तुत किया जाता है जिससे नाट्य प्रदर्शन के प्रभाव में वृद्धि होती है। इस वृद्धि में कमी ना आए इसके लिए नाट्य निर्देशक को ध्यान रखना है कि ध्वनि संकेत उचित समय पर प्रकट हो नहीं तो नाटकीय प्रभाव में क्षति भी हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि ध्वनि संकेत के साथ पूर्व अभ्यास किए जाएं और नाट्य प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाया जाए। ध्वनि और संगीत योजना एक ऐसी व्यवस्था या भाषा है जो व्यक्ति के मनोभावों को बिना शब्दों के अभिव्यक्त करती है। वह प्रत्येक प्रकार की संवेदना को सरलता से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रंगमंच की संरचना उपर्युक्त महत्वपूर्ण तत्वों के संयोजन से ही हुई है, जो उसकी सार्थकता को पूर्ण बनाते हैं। इसके साथ ही यह तत्व नाटक की मूल संवेदना को मंच पर मूर्तरूप प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इसलिए रंग–संरचना के इन समस्त तत्वों को एक समान महत्व देना अनिवार्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 गिरीश रस्तोगी, नाटक तथा रंग परिकल्पना, पृष्ठ–1.
2. गोविंद चातक, नाटक की साहित्यिक संरचना, पृष्ठ–13.
3. डॉ0 गिरीश रस्तोगी, नाटक तथा रंग परिकल्पना, पृष्ठ–5.
4. डॉ0 चंद्रसेन नावाणी, हिंदी के रंगमंचीय नाटकों का शिल्प विधान, पृष्ठ–213.
5. जयदेव तनेजा, आधुनिक भारतीय रंग लोक, पृष्ठ–47.
6. विकल गौतम, हिंदी नाटकः रंग शिल्प दर्शन, पृष्ठ–13.
7. जयदेव तनेजा, आधुनिक भारतीय रंग लोक, पृष्ठ– 51.
8. डॉ0 गिरीश रस्तोगी, नाटक तथा रंग परिकल्पना, पृष्ठ–6.

*****